International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 28-05-2021, Accepted: 10-06-2021, Published: 28-06-2021
Volume 7, Issue 3, 2021, Page No. 140-142

योग दर्शन में ईश्वर का स्थानः एक साधन या साध्य

सचिन भारद्वाज, गणेश शंकर गिरी
शोध छात्र, योग शिक्षा विभाग, डॉक्टर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मध्य प्रदेश, भारत

सारांश
संसार में मानव जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति हेतू हमें शास्त्रों में विभिन्न पद्धतियॉ का वर्णन देखने को मिलता है, इन सभी पद्धतियों के बीच अपने सुव्यवस्थित व प्रयोगात्मक ज्ञान के कारण योगदर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है। प्रकृति मे होने वाली घटनाओं को देखकर मनुष्य की बुद्धि आदिकाल से ही उसको जानने व समझने का प्रयास करती रही है, परन्तु समग्र रूप से कारणभूत सर्वोच्च सत्ता को न जानने के कारण मुख्यतः भौतिक प्रगति के क्षेत्र मे ही उन्नति दिखाई देती है, आाधारभूत समस्या की ओर मानव कुछ विशेष अनुसंधान नही कर पाता है, साधारण चिंतन व विशेष विषयपरक अध्ययन के माध्यम से उस सर्वोच्च सत्ता को जानना दुर्लभ है, हमें आवश्यकता है, कि हम अपने चेतना को वह उर्ध्वगति प्रदान करें, जिसके माध्यम से हम उस सर्वव्यापी सर्वोच्च सत्ता को जान सकें, इसी मूलभूत समस्या ने भारतीय व पाश्चात्य विचारधारा को दर्शन के रूप विकसित किया और आज अधिकाशं मतानुयायी ईश्वर की सर्वोच्च सत्ता को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार भी करते है, कुछ अपवाद भी है। सामान्य रूप से प्रत्येक दार्शनिक चितंन प्रणाली में सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति के लिये हम विभिन्न सैद्धान्तिक व्याख्याओं को तो बहुतायात में देखते है, पर इन दार्शनिक विवेचनाओं के बीच प्रयोगात्मक धारा कही ओझल सी हो जाती है, योगदर्शन उसी आभाव को पूर्ण करने साथ ही अपने सुव्यवस्थित व प्रयोगात्मक ज्ञान के कारण दार्शनिक परम्पराओं में एक केन्द्रीभूत तत्व के रूप में विद्यमान हो जाता है, सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति हेतू योगदर्शन उस ईश्वर के स्वरूप की व उसकी प्राप्ति में सहायक मार्गो की स्पष्ट रूप से व्याख्या करता है,तथा उस परम तत्व की साधना मे प्रासागिंकता का भी वर्णन करता है।

मूलशब्दः योगदर्शन, ईश्वर, साधन, साध्य, प्राणिधान

प्रस्तावना

षड दर्शनों में ईश्वर का वर्णन

भारतीय दर्शन परम्परा में योगदर्शन अपनी प्रयोगात्मक कार्यप्रणाली के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखता है, भारतीय परम्परा के प्रमुख आस्तिक षडदर्शन भी ईश्वर की सत्ता को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करते है, वे ईश्वर को परम ज्ञान का भंडार व सर्वज्ञ मानते है, न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग, मीमांसा–वेदान्त ये प्रत्येक युग्म एक दुसरे के साथ अल्पाधिक सैद्धान्तिक समानता रखते है, ईश्वर के अस्तित्व के सबंध में सभी एक मत है, परन्तु उसको व्यक्त करने व प्राप्त करने के सन्दर्भ में भिन्न–2 विचारधारायें देखने को मिलती हैं।

न्याय दर्शन में आत्मा के दो प्रकार बताये गये है– जीवात्मा और परमात्मा

परमात्मा को ही ईश्वर कहा गया है, ईश्वर जीवात्मा से पूर्णतः भिन्न है, जीवात्मा जहॉ अल्पज्ञ, अनित्य एवं बन्धनग्रस्त है वही परमात्मा सर्वज्ञ नित्य एवं स्वतंत्र है, न्याय दर्शन में ईश्वर को छः प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त माना गया है, न्याय दर्शन के उपर लिखित ग्रन्थ न्याय कुसुमांजलि में उदयनाचार्य जी ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में 9 तर्क देते है, यह उस परम सत्ता को स्रष्टिकर्ता ,पालनकर्ता व संहारकर्ता के रूप में देखता है, और इस प्रकार न्याय परम्परा ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करती हैं।

वैशेषिक दर्शन में प्रयुक्त कुछ सूत्रों में ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण प्राप्त होता है,इन सूत्रों में ईश्वर का स्पष्ट वर्णन तो नही दिखाई पडता, परन्तु आगे चलकर प्रशस्तपाद भाष्य तथा न्याय कन्दली आदि वैशेषिक ग्रन्थों में ईश्वर का वर्णन मिलता है, न्याय और वैशेषिक समान तन्त्र माने जाते है, वैशेषिक के परवर्ती आचार्यो का ईश्वर विचार न्याय दर्शन पर आधारित है।

मीमांसा दर्शन नैयायिको के समान ईश्वर का समर्थन तो नही करता परन्तु निरीश्वर साख्यवादियों की तरह निषेध भी नही करता है, कुमरिल भट् ने सबधाक्षेपपरिहार ग्रन्थ में शब्द और अर्थ के सबंध में कर्ता होना स्वीकार नही किया है, उपयुक्त वचनों को स्वीकार कर लेने पर मीमांसक निरीश्वरवादी माने जाते है ,कुमरिल भट्, नंदीश्वर आदि मीमांसकों ने अनुमान सिद्ध ईश्वर को अस्वीकार किया है, तथपि वे वेद सिद्ध ईश्वर को स्वीकार करते है।

वेदान्त दर्शन में ईश्वर को स्वीकार किया गया है, स्रष्टि का कारण ईश्वर ही है सारा स्रष्टि व्यापार ईश्वर द्वारा संचालित होता है– प्रकृतिश्च प्रतिज्ञा दृष्टान्तानुपरोधात् ।। 1–4.23।। वेदान्त की प्रमुख शाखाओं में से एक अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य ने ईश्वर को जगत का निमित्त कारण के साथ–साथ उपादान कारण भी स्वीकार किया है, उनके अनुसार मूलतत्व ब्रहं है, ब्रहं के दो रूप है– सगुण ब्रहं और निर्गुण ब्रहं दोनो वस्तुतः एक ही है, किन्तु व्यवहारिक व परमार्थिक दो दृष्टिकोणों से दो रूपों में स्वीकार किये जाते है, निर्गुण ब्रहं ही परब्रहं है। वही श्रुति द्वारा प्रतिपादित सत्यम'–ज्ञानम–अनन्तम ब्रहं है, परन्तु यही ब्रहं व्यवहारिक दृष्टि से जब माया से आच्दादित होता है, तो इस मायोपहित ब्रहं को सगुण ब्रहं कहते है, संसार के दृष्टिकोण से ही ईश्वर का अस्तित्व है।

सांख्य दर्शन में ईश्वर के अस्तित्व को लेकर सांख्य दर्शन के भाष्यकारों एवं समर्थको में मतभेद है, वाचस्पति मिश्र एवं अनिरूद्ध जैसे सांख्य दार्शनिको ने सांख्य को अनीश्वरवादी माना है, तो विज्ञानभिक्षु ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते है,

सांख्य दर्शन ने प्रकृति और पुरूष से भिन्न किसी अन्य ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार करने की आवश्यकता नही समझी, उसके अनुसार प्रकृति के स्वाभाविक प्रवृति के कारण ही प्रकृति में गुण क्षोभ तथा उससे स्रष्टि का उद्भव और विकास पुरूष के कैवल्य के लिये होता है।विद्वानों का मत है, कि मूल सांख्य ईश्वरवादी रहा होगा, किन्तु ईश्वरकृष्ण के समय में बौद्ध एवं जैन दर्शन के

प्रभाव में आकर निरीश्वरवाद की ओर मुड गया, बाद में फिर सांख्य दर्शन में ईश्वर को प्रतिष्ठा मिली, जो भी हो आज सांख्य की गणना निरीश्वर वादी दर्शन के रूप में ही होती है, तथा सेश्वर सांख्य के रूप में योगदर्शन को स्वीकार किया जाता है।
योगदर्शन ईश्वर को स्वीकार करता है, और इसी रूप से वह सांख्य से भिन्न है योग एवं सांख्य समान तत्व होते हुए क्रमशः सेश्वर सांख्य और निरीश्वर सांख्य कहे जाते है, योगदर्शन ज्ञान हेतू चित्त की शुद्धि व इस हेतू ईश्वर प्रणिधान पर बल देता है, योग दर्शन ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करता है फिर भी योगदर्शन में ईश्वर का महत्व व स्थान वह नही है, जो कि न्याय दर्शन में ईश्वर को प्राप्त है,योगदर्शन में ईश्वर का व्यावहारिक महत्व है।

अध्ययन क्षेत्रः योगदर्शन मे ईश्वर

योगदर्शन में ईश्वर को पुरूष विशेष कहा है, उनके अनुसार क्लेश,कर्म, विपाक एवं आशय से सर्वथा जो मुक्त है, जो पुरूषों से विशेष है, वही ईश्वर है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैपरामृष्टः पुरूषविशेष ईश्वरः ।। 1/24।।

क्लेश – जो दुःख देते है, उन दुःखों के कारणों कों क्लेश कहते है, क्लेश पॉच है– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अभिनिवेश, इन क्लेशों को योगदर्शन में दुःखों का मुख्य कारण कहा गया है। ईश्वर इन क्लेशों से अलग है।
कर्म –योगसूत्र के चौथे पाद में 4 प्रकार के कर्मो का उल्लेख देखने को मिलता है, शुक्ल, कृष्ण, शुक्लकृष्ण व अशुक्लकृष्ण इन सभी कर्मो में अशुक्लकृष्ण को साधना के अनुकूल माना गया है,अन्य कर्म बन्धन में बाधंते है, ईश्वर इन कर्मो से अलग है।
विपाक – कर्मो के फलों को विपाक कहते है, कर्म और फलों का बहुत गहरा सम्बन्ध है, जिस प्रकार का कर्म हमारे द्वारा किया जाता है उसी के अनुसार हमें फल प्राप्त होता है। ईश्वर इन विपाकों से भी अछुता है।
आशय– कर्म संस्कारों के समुदाय का नाम आशय है, अर्थात् सुख दुख भोग आदि उत्पन्न वासना ही आशय है। ईश्वर इन आशय से भी परे है।
सामान्य पुरूष इन क्लेश कर्म आदि से प्रभावित होते है, जबकि ईश्वर इनसे सर्वथा अप्रभावित है, जीव अविद्या राग–द्वेष आदि से प्रभावित हो कर्म करता है और फल भोगता है पर ईश्वर इन सबसे मुक्त है ईश्वर बन्धनग्रस्त जीवों से तो विशेष है वह मुक्त आत्माओं से भी विशेष है क्योकि मुक्त आत्माऍ पहले बन्धनग्रस्त थी बाद में योगसाधना से मुक्त हुई है, जबकि ईश्वर नित्य मुक्त है, वह कभी भी बन्धन में नही था और न ही उसके बन्धन ग्रस्त होने की आशंका है, इस प्रकार वह पुरूष विशेष ही ईश्वर है।
योगदर्शन में ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, नित्य, अनादि, अनन्त, आप्तकाम एवं पूर्ण माना गया है वह त्रिगुणातीत है ईश्वर में ऐश्वर्य और ज्ञान की पराकाष्ठा है, ईश्वर गुरूओं का भी गुरू है वह वेद शास्त्रों का प्रथम उपदेष्टा है, प्रणव उसका वाचक है यानि ओम उसका प्रतीक है, ईश्वर एक है वह दयालु व करूणाशील है जो ईश्वर की भक्ति करते है वह परम सत्ता उनकी सहायता करती है तथा आध्यात्मिक आर्ग में आने वाली बाधाओं को भी दूर करती है।
यद्यपि योगदर्शन में ईश्वर को विश्व का सृष्टिकर्ता ,पालनकर्ता, व संहारकर्ता के रूप में स्वीकार करने में टीकाकारों में मतभेद दिखाई पडता है,व्यासभाष्य व वाचस्पति मिश्र की तत्व वैशारदी में ईश्वर का स्रष्टि रचियता आदि का स्वरूप प्राप्त है, भास्वती टीका में भी ईश्वर को कल्प प्रलय तथा महाप्रलय में निर्माण चित्त करने वाला बताया है ईश्वर ज्ञान धर्म पाने के लिये जो साधक इच्छुक है वे प्रलयकाल मे उसे पायेगे, किन्तु ईश्वर प्रणिधानादि उपायों से चित्त को समाहित कर प्रचलित मोक्षविद्या के द्वारा जो पार जाने की इच्छा करते है, उनके लिये काल नियम नही है भास्वती टीका में वर्णन आता है कि ईश्वर प्रधानतत्व तथा पुरूष तत्व नही है, इसको भली भॉति जानना चाहिये, ईश्वर भी प्रधान पुरूष द्वारा निर्मित होते है, वे पुरूष विशेष है, और वे ऐश्वर्य, निरतिश्य, सर्वज्ञता व सर्वशक्ति से अनादिकाल से युक्त है,परमार्थ के साधक योगीगण केवल इस निर्मल, न्यायसिद्ध,ऐश्वर्य संम्पन्न में स्थिर बुद्धि होकर उनके प्राणिधान में तत्पर होते है।
योगसिद्धि टीका में ईश्वर को प्रकृति व पुरूष से अलग किसी नये तत्व के रूप में नही माना गया है, वे कहते है कि पुरूष विशेष का अर्थ है कि ईश्वर एक प्रकार का पुरूष ही है, योगसिद्धि कहती है कि योगदर्शन में ईश्वर को 26 वें तत्व के रूप मे मानना एक सीमित अर्थो मे ही उचित है, साधारण पुरूष और ईश्वर में अन्तर यह है, कि साधारण पुरूषों में क्लेशादि का भोग आरोपित होता है, किन्तु ईश्वर में इस प्रकार का भोग आरोपित नही होता है, इस प्रकार की व्याख्याओ का वर्णन हमें योगसूत्र की कुछ प्रमुख टीकाओं में देखने को मिलता है।

विश्लेषणः महर्षि पंतजलि ने योग दर्शन में प्रमुख चार स्थानों पर ईश्वर प्रणिधान का वर्णन किया है–

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।। 1/23।।
तपःस्वाध्यायईश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः।। 2/11।।
शौचसंतोषतपस्वाध्यायईश्वरप्रणिधानानि नियमाः।। 2/32।।
समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।। 2/45।।

योगदर्शन में ईश्वर का प्रतिपादन एक ऐसे तत्व के रूप में हुआ है, जिसे ध्येय बनाकर साधक शीघ्र ही समाधि प्राप्ति में समर्थ हो सकता है, समाधि व उसके फल कैवल्य की प्राप्ति हेतू ईश्वर प्रणिधान का विशेष महत्व है, ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है– ईश्वर की भक्ति, ध्याान एवं समर्पण, व्यास भाष्य के अनुसार सभी क्रियाओं को परमगुरू परमात्मा में अर्पण करना और उसके फल की इच्छा का त्याग करना ही ईश्वर प्रणिधान कहा गया है।
योगसूत्र के समाधि पाद में 23 वें सूत्र में तथा साधनपाद के 1, 32 वें, तथा 45 वें सूत्र में ईश्वर शब्द का वर्णन देखने को मिलता है, ईश्वर प्रणिधान का सर्वप्रथम उल्लेख समाधि पाद में ही देखने को मिलता है उसके बाद साधन पाद में क्रियायोग में, फिर नियम के अतर्गत तत्पश्चात् समाधि सिद्धि में ईश्वर प्रणिधान को एक महत्वपूर्ण व योग साधना के अभिन्न अंग के रूप में वर्णित किया गया है, प्रश्न यह है कि उपयुक्त सभी स्थलों पर ईश्वर प्रणिधान का अर्थ एक ही है या अलग अलग है, यादि ईश्वर प्रणिधान से ही समाधि की प्राप्ति हो जाती है तो फिर अन्य क्या योग के अन्य मार्ग व्यर्थ है ।
समाधि पाद में वर्णित ईश्वर प्रणिधान भक्ति योग प्रधान है, वह समाधि प्राप्ति का सुगम मार्ग है, तज्जपस्तर्थभावनम्।। 1/28।। सूत्र में जप करने से एवं ईश्वर का ध्यान करने से भी समाधि प्राप्ति की बात कही गयी है, वही क्रियायोग में ईश्वर प्रणिधान एक प्रमुख अंग के रूप में माना गया है, तप,स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को क्रिया योग कहा गया है, यहॉ ईश्वर ध्यान का विषय का नही है अपितु ईश्वर को लक्ष्य करके कर्मफल त्याग का भाव करना बताया है जिसे निष्काम कर्म कहा जाता है।
साधन पाद में ईश्वर प्रणिधान का वर्णन करते हुए व्यास जी कहते है, कि सभी क्रियाओं को परम गुरू परमात्मा में अर्पण करना तथा उसके फल की इच्छा का त्याग करना अर्थात् निष्काम कर्म करना ही ईश्वर प्रणिधान कहलाता है।
साधन पाद के सूत्र संख्या 32 में ईश्वर प्रणिधान की चर्चा नियम के अतंर्गत है, शौच,संतोष,तप,स्वाध्याय,और ईश्वर प्रणिधान नियम कहलाते है, नियम वे है जिनका पालन करने से अन्दर व बाहर

की पवित्रता आती है, साधक का चित्त शुद्ध होता है, और वह योग मार्ग के लिये उपयुक्त बनता है, और धीरे धीरे अपने चरम लक्ष्य की प्राप्ति कर लेता है, यहॉ ईश्वर प्रणिधान नैतिक अनुशासन और शरीरिक –मानसिक तप का एक अंग है।

समाधिसिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।। 2/45 सूत्र में ईश्वर प्रणिधान से समाधि प्राप्त होने की बात कही गई है, योगदर्शन में वर्णित अन्य विधियों की तुलना में ईश्वर प्रणिधान के माध्यम से समाधि प्राप्ति सरल व सहज हो जाती है।

योगदर्शन मे तीन प्रकार के साधक और उनके अनुसार तीन प्रकार की साधनाओं का वर्णन किया गया है। उच्च साधकों के लिये अभ्यास व वैराग्य, मध्यम साधकों के लिये कृियायोग, निम्न साधकों के लिये अष्टांग योग का वर्णन किया गया है, योगदर्शन में चित्त की निर्मलता व एकाग्रता के लिये अनेक विधियों का वर्णन किया गया है, इन विधियों में से किसी भी एक विधि द्वारा साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है, इन सभी को योगसूत्र में विकल्प के रूप में बताया गया है, जिसके लिये महर्षि पंतजलि वा शब्द का प्रयोग करते है, संस्कृत भाषा में एक शब्द का स्थान विशेष के अनुसार भिन्न–2 अर्थ देखने को मिलता है वा संस्कृत भाषा में एक अवयव है, जिसका अर्थ विकल्प, सादृश्य, वितर्क एवं समुच्चय आदि के रूप में प्रयुक्त होता है, संस्कृत के कुछ प्रसिद्ध साहित्यों में जैसे– किरातार्जुनीय 3/13 में भी वा शब्द का प्रयोग हुआ है, परन्तु यहॉ इसका अर्थ समुच्चय माना गया है, योगसुत्र में वर्णित ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।। 1/23।। सूत्र में ईश्वर प्रणिधान को यहॉ विकल्प के रूप न लेकर समुच्चय के रूप में लिया गया है क्योकि योगदर्शन की प्रमुख तीन साधनाओं में ईश्वर प्रणिधान को भिन्न –2 अर्थो में अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार किया गया है, अभ्यास व वैराग्य आदि को परिभाषित करते समय हम श्रद्धा पूर्वक किये गये अभ्यास को योगानुकूल मानते है यहॉ श्रद्धा का अर्थ उस परम सत्ता ईश्वर के प्रति भावपूर्ण समर्पण से है, कृियायोग में ईश्वर प्रणिधान को निष्काम कर्म साधन के रूप में स्वीकार किया है अर्थात् अपने कर्मों को उस सर्वोच्च सत्ता को समर्पित कर कर्मो के फलों से मुक्त हो जाने से है, ईश्वर प्रणिधान के द्वारा समाधि प्राप्ति में ईश्वर को भक्ति योग के परिप्रेक्ष्य में देखा गया है अष्टांग योग में वर्णित नियम में ईश्वर प्रणिधान को व्यक्तिगत व नैतिक अनुशासन के रूप में लिया गया है।

ईश्वर को अलग तत्व के रूप में स्वीकार करने पर भी सृष्टि प्रकृिया में उसके योगदान को प्रमुख टीकाकारों ने स्वीकार किया है, वाचस्पति मिश्र के अनुसार प्राणी का जात्यान्तर परिणाम अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर को प्राप्त करने में कारण रूप प्रकृति के त्रिगुण धर्मादि मात्र निमित्त है, प्रयोजक नही, क्योकि कोई भी कार्य अपने कारण का प्रवर्तक नही होता, प्रवर्तक तो केवल स्वतंत्र व्यक्ति ही हो सकता है, विज्ञानभिक्षु ने प्रकृति की साम्यावस्था में क्षोभ उत्पन्न करने के कारण ईश्वर को सृष्टि का उद्बोधक माना है, प्रस्तुत तथ्यों पर विश्लेषण करने पर हम योगदर्शन में प्रदत्त साधना पद्धतियों में ईश्वर के स्वरूप को साधन व साध्य के रूप देखते है।

निष्कर्ष

योगदर्शन द्वारा प्रतिपादित ज्ञान मानव को संसारिक दुःखों से मुक्त कराने व हमारी चेतना को विस्तार प्रदान करने में सहायक है, योगसूत्र का विषय केवल दार्शनिक विचारों के बौद्धिक विलास तक ही सीमित नही है अपितु यह विषय हमे अनुभव पर आधारित साधना पद्धतियों का परिचय भी प्रदान करता है, महर्षि पतंजलि प्रारम्भ में ही साधक के लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए चित्त की शुद्धि के लिये अनेक साधनों का वर्णन करते है, इन्हीं साधनों के बीच ईश्वर प्राणिधान नामक साधन की सार्थकता व महत्ता को सर्वोपरि माना गया है ईश्वर के अस्तित्व को साध्य के रूप में स्वीकार कर उसी को साधन का भी एक अभिन्न अंग मानकर योगसूत्र उस परम सत्ता के महत्व को ओर अधिक बढा देता है।

संदर्भ सूची

1. स्वामी हरिहरानन्द आरण्य (1980), पातंजल योग दर्शन, अनुवादक डा0 रामशंकर भट्टाचार्य, तृतीय संस्करण, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
2. स्वामी सत्यानन्द सरस्वती (2013), मुक्ति के चार सोपान, योगा पब्लिकेशन ट्रस्ट, मुंगेर (बिहार).
3. डा0 पी. वी. करंमवेलकर (2005), पातंजल योगसूत्र, कैवल्यधाम योग संस्थान, लोनावला (महाराष्ट्र).
4. https:/www. researchgate.net/profile/ganesh-giri,Access April 2021.
5. डॉ सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव (1988), पातंजल योगदर्शनम्, द्वितीय संस्करण, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
6. 6.डॉ. बी. आर. शर्मा, पातंजल योगसूत्र की दार्शनिक पृष्ठभूमि. आध्यात्म बोध, बाबू गोपीचंद जी गुप्त, नेहरू रोड, विले पार्ले पूर्व, मुबई
7. वाचस्पति मिश्र (1935), तत्ववैशारदी (सांख्यदर्शनम्), दामोदर शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
8. विज्ञानभिक्षु (1935), (योगवर्तिक सांख्यदर्शनम्), दामोदर शास्त्री चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
9. एस. राधाकृष्णन (1989), भारतीय दर्शन, राजपाल एंड सन्स नई दिल्ली
10. http://www.enigmatic.yoga/portfolio/god-in-patanjalis-yoga-sutra